

योग दर्शन का संक्षिप्त परिचय

योगदर्शन छः आस्तिक दर्शनों (षड्दर्शन) में से एक है। प्रकृति, पुरुष के स्वरूप के साथ ईश्वर के अस्तित्व को मिलाकर मनुष्य जीवन की आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक उन्नति के लिये दर्शन का एक बड़ा व्यावहारिक और मनोवैज्ञानिक रूप योगदर्शन में प्रस्तुत किया गया है। योग दर्शन के आदि आचार्य हिरण्यगर्भ है | हिरण्यगर्भ – सूत्रों के आधार पर (जो इस समय लुप्त है) पतञ्जलि मुनि ने योग दर्शन का निर्माण किया |

योगदर्शन के चार पाद हैं और १९५ सूत्र हैं | समाधिपाद में ५१, साधनपाद में ५५, विभूतिपाद में ५५ और केवल्यपाद में ३४ |

१. समाधिपाद – इसमें समाहितचित्त वाले सबसे उत्तम अधिकारियों के लिए योग का वर्णन किया गया है | सारा समाधिपाद एक प्रकार से निम्न तीन सूत्रों की विस्तृत व्याख्या है |

- (१) योग चित्त की वृत्तियों का रोकना है |
- (२) वृत्तियों का निरोध होने पर द्रष्टा के स्वरूप में अवस्थिति होती है |
- (३) स्वरूपावस्थिति से अतिरिक्त अवस्था में द्रष्टा वृत्ति के समान रूप वाला प्रतीत होता है |

चित्त, बुद्धि, मन, अन्तःकरण लगभग पर्यायवाचक समानार्थक शब्द हैं. जिनका भिन्न – भिन्न दर्शनकारों ने अपनी अपनी परिभाषा में प्रयोग किया है |

मन की चञ्चलता प्रसिद्ध है। सृष्टि के सारे कार्यों में मन की स्थिरता ही सफलता का कारण होती है। सृष्टि के महान पुरुषों की अद्भुत शक्तियों में उनके मन की एकाग्रता का रहस्य छिपा हुआ होता है।

योग के अन्तर्गत मन को दो प्रकार से रोकना होता है – एक तो केवल एक विषय में लगातार इस प्रकार लगाए रखना कि दूसरा विचार न आने पावे, इसको एकाग्रता अथवा सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं जिसके चार भेद हैं।

(१) वितर्क – किसी स्थूल विषय में चित्तवृत्ति की एकाग्रता।

(२) विचार – किसी सूक्ष्म विषय में चित्तवृत्ति की एकाग्रता।

(३) आनन्द – अहंकार विषय में चित्तवृत्ति की एकाग्रता।

(४) अस्मिता – अहंकार रहित अस्मिता विषय में चित्तवृत्ति की एकाग्रता।

इसकी सबसे ऊँची अवस्था विवेक ख्याति है, जिसमें चित्त का आत्माध्यास छूट जाता है और उसके द्वारा आत्मस्वरूप का उससे पृथक् – रूप में साक्षात्कार होता है, किन्तु योग दर्शन में इसको वास्तविक आत्मा स्थिति नहीं बतलाया गया है। यह भी चित्त की एक वृत्ति अथवा मन का ही एक विषय है (एक उच्चतम सात्त्विक वृत्ति), किन्तु इसका निरन्तर अभ्यास वास्तविक स्वरूपस्थिति में सहायक होता है।

निरोध अपने स्वरूप का सर्वथा नाश हो जाना नहीं है, किन्तु जड़ तत्त्व के अविकेकपूर्ण संयोग का चेतन तत्त्व से सर्वथा नाश हो जाना है। इस संयोग के न रहने पर द्रष्टा की सुद्ध परमात्मा स्वरूप में अवस्थिति होती है।

२. साधनपाद – इसमें विक्षिप्त चित्तवाले मध्यम अधिकारियों के लिए योग का साधन बतलाया गया है। सर्वबन्धनों और दुःखों के मूल कारण पांच क्लेश हैं – अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश।

- * क्लेशों से कर्म की वासनाएँ उत्पन्न होती हैं।
- * कर्म – वासनाओं से जन्म रूप वृक्ष उत्पन्न होता है।
- * उस वृक्ष में जाती, आयु और भोग रुपी तीन प्रकार के फल लगते हैं।
- * इन तीन फलों से सुख – दुःख रुपी दो प्रकार का स्वाद होता है।
- * जो पुण्य कर्म (हिंसा रहित कूसरे के कल्याणार्थ) किये जाते हैं उनसे जाती, आयु और भोग में सुख मिलता है।
- * जो पाप कर्म (हिंसात्मक दूसरों को दुःख पहुंचाने की लिए) किये जाते हैं उनसे जाती, आई और भोग में दुःख पहुँचता है।

किन्तु यह सुख भी तत्त्ववेत्ता की दृष्टि में दुःखस्वरूप ही है; क्योंकि विषयों में परिणाम दुःख, ताप दुःख और संस्कार दुःख मिला हुआ होता है; और तीनों गुणों के सदा अस्थिर रहने के कारण उनकी सुख – दुःख और मोह रुपी वृत्तियाँ भी बदलती रहती हैं। इसलिए सुख के पीछे दुःख का होना आवश्यक है। दुःख के नितांत अभाव का उपाय निर्मल अडोल विवेक ख्याति है।

विवेकख्याति की सात प्रकार की सबसे ऊँची अवस्थावाली प्रज्ञा होती है।

- (१) जो कुछ जानना था जान लिया (दुःख का कारण) – अब कुछ जानने योग्य नहीं रहा ।
अर्थात् जितना गुणमय दृश्य है वह सब परिणाम, ताप और संस्कार दुःखों से दुःख स्वरूप ही है । इसलिए 'हेय' है ।
- (२) जो कुछ करना था दूर कर दिया (– अब कुछ दूर करने योग्य नहीं रहा । अर्थात् द्रष्टा और दृश्य का संयोग जो ' हेय हेतु ' है वह दूर कर दिया ।
- (३) जो कुछ साक्षात् करना था कर लिया, अब कुछ साक्षात् करने योग्य नहीं रहा । अर्थात् निरोध समाधि द्वारा ' हान ' को साक्षात् कर लिया ।
- (४) जो कुछ करना था कर लिया । अब कुछ करने योग्य नहीं रहा । अर्थात् अविप्लव विवेक – ख्याति सम्पादन कर लिया ।
- (५) चित्त ने अपने भोग अपवर्ग दिलाने का अधिकार पूरा कर दिया, अब कोई अधिकार शेष नहीं रहा ।
- (६) चित्त के गुण अपने भोग अपवर्ग का प्रयोजन सिद्ध करके अपने कारण में लीं हो रहे हैं
- (७) गुणों से पर हो कर शुद्ध परमात्मा अवस्थिति हो रही है ।

योग के आठ अंग –

निर्मल विवेक ख्याति जिसे 'हान' का उपाय बतलाया है उसकी उत्पत्ति का साधन अष्टांग योग है । अर्थात् योग के आठ अंगों के अनुष्ठान से – अशुद्धि के क्षय होने पर – ज्ञान की दीप्ति – विवेक – ख्याति पर्यन्त बढ़ जाती है ।

योग के आठ अंग – याम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि है ।

साधनपाद में योग के **पाँच बहिरंग साधन** यम , नियम, आसान, प्राणायाम, प्रत्याहार बतलाये गए हैं । विभूतिपाद में उसके **अन्तरंग** धारणा , ध्यान, समाधि का निरूपण करते हैं

३. विभूतिपाद – धारणा, ध्यान और समाधि – तीनों मिलकर संयम कहाते हैं । इस संयम के विनियोग से नाना प्रकार की सिद्धियां प्राप्त हो सकती हैं । ये सिद्धियां – श्रद्धालुओं के योग में श्रद्धा बढ़ाने में और विक्षिप्त (असमाहित) चित्त वालों के चित्त को एकाग्र करने में सहायक होती हैं , किन्तु इन्समे आसक्ति नहीं होनी चाहिए ।

योगमार्ग पर चलने वाले के लिए नाना प्रकार के प्रलोभन आते हैं । अभ्यासी को उनसे सावधान रहना चाहिए, उसमे फँसने से और घमंड से बचे रहना चाहिए । स्थान वालों के आदर भाव करने पर लगाव और अभिमान नहीं करना चाहिए । चित्त और पुरुष के भेद जानने वाला सारे भावों के अधिष्ठातृत्व और सर्वज्ञातृत्व को प्राप्त होता है । किन्तु योगी को उनमे भी अनासक्त रह कर अपने असली ध्येय की ओर बढ़ना चाहिए । उसमे भी वैराग्य होने पर, दोषों का बीज क्षय होइन पर, कैवल्य होता है ।

४. कैवल्यपाद – इसमें चित्त और चित्त के सम्बन्ध में जो जो शंकाएँ हो सकती हैं, उनका युक्ति पूर्वक निवारण किया है । चित्त की नौ अवस्थाएँ –

(१) जाग्रत – अवस्था – सत्त्व गुण गौणरूप से दबा रहता है। तम, सत्त्व को वृत्ति के यथार्थ रूप के दिखलाने से रोकता है। रज प्रधान हो कर चित्त को इन्द्रियों द्वारा बाह्य विषयों में उपरक्त करने में समर्थ होता है।

(२) स्वप्नावस्था – सत्त्व गुण, गौणतर रूप से दबा रहता है। तम, रज को इतना दबा लेता है कि वह चित्त को इन्द्रियों द्वारा बाह्य विषयों में उपरक्त नहीं कर सकता है। किन्तु रज की क्रिया सूक्ष्म रूप से होती रहती है, जिससे वह चित्त को – मन द्वारा – स्मृति के संस्कारों में – उपरक्त करने में समर्थ रहता है।

(३) सुषुप्ति अवस्था – सत्त्व गुण, गौणतम रूप से दब जाता है। तमोगुण, रजोगुण की स्वप्नावस्था वाली क्रियाओं को भी रोक कर प्रधान रूप से चित्त पर फ़ैल जाता है। इसलिए किसी विषय का किसी प्रकार भी ज्ञान नहीं रहता परन्तु किसी विषय के ज्ञान न होने की प्रतीति होती रहती है, अर्थात् रज का नितांत आभाव नहीं होता, वह कुछ अंश में बना ही रहता है।

(४) प्रलयावस्था – प्रलय में चित्त के अवस्था सुषुप्ति जैसी होती है, केवल भेद इतना है कि – प्रलय समष्टि चित्त कि सुषुप्ति है – जबकि यह सुषुप्ति – व्यष्टि चित्त की इसमें जीव गाढ़ निद्रा जैसे अवस्था में रहता है।

(५) समाधि प्रारम्भ अवस्था – तमोगुण गौणरूप से रहता है। रजो गुण को चित्त को चलायमान करने की क्रिया निर्बल होती है। सत्त्व गुण प्रधान हो कर चित्त को एकाग्र करने और वास्तु को यथार्थ रूप को दिखलाने में समर्थ होता है।

(६) सम्प्रज्ञात समाधि (एकाग्रता) – तमोगुण गौणतर रूप में दबा रहता है । सत्त्व गुण रजोगुण को दबा कर प्रधानरूप से अपना प्रकाश करता है, जिससे चित्त वास्तु के तदाकार हो कर उसका यथार्थ रूप दिखलाने में समर्थ होता है । स्थूल शरीर में कार्य बंद हो कर सूक्ष्म शरीर में एकाग्र वृत्ति रहती है ।

(७) विवेकख्याति – सम्प्रज्ञात समाधि और असम्प्रज्ञात समाधी के बीच की अवस्था । तमो गुण गौणतम रूप में नाम मात्र रहता है । सतत गुण का प्रकाश पूर्णतया फैल जाता है । रजोगुण केवल इतना रहता है कि जिससे, पुरुष को चित्त से भिन्न दिखलाने की क्रिया हो सके और तम इस वृत्ति को रोकने मात्र रह जाता है ।

(८) असम्प्रज्ञात समाधि (स्वरूपवास्थि) – सत्त्व चित्त में बाहर से तीनोंगुणों का वृत्ति रूप परिणाम होना बंद हो जाता है । चित्त में केवल निरोध परिणाम अर्थात् संस्कार शेष रहते हैं, जिनके दुर्बल होने पर उसे फिर व्युत्थान दशा में आना पड़ता है ।

(९) प्रतिप्रसव – चित्त को बनाने वाले गुणों की अपने कारणों में लीं होने की अवस्था । चित्त में निरोध परिणाम अर्थात् संस्कार भी निवृत्त हो जाते हैं और पुरुष शुद्ध कैवल्य परमात्मा स्वरूप में अवस्थित हो जाता है ।

इनको चित्त की क्षिप्त – विक्षिप्त आदि पाँच भूमियों के विषय से पृथक समझना चाहिए ।

00000